RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18, अंक-2, मार्च अप्रैल मई 2025

रासो
त्रैमासिक शोध पत्रिका
2005
॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम् ॥

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18 अंक - 2 मार्च-अप्रैल-मई-2025

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टिट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल वेद - विवेचन

राहुल कुमार
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय संस्कृति में वेदों का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वेद केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं हैं, बल्कि वे समग्र मानव जीवन, समाज और प्रकृति की संरचना का प्रतिबिंब हैं। वेदों का ज्ञान मानव के आचार, नैतिकता, धर्म, विज्ञान और सामाजिक व्यवस्था का मार्गदर्शन करता है। मनुस्मृति में स्पष्ट उल्लेख है कि वेद धर्म का मूल हैं और समस्त ज्ञान का स्रोत हैं। इसका अर्थ यह है कि वेदों में न केवल चारों वर्ण और चार आश्रमों का ज्ञान समाहित है, बल्कि तीनों लोक, समय के तीन काल—भूत, वर्तमान और भविष्य—का भी सम्यक विवेचन है। वेदों में निहित ज्ञान का दायरा इतना व्यापक है कि मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को इसमें पाया जा सकता है।

वेद शब्द की उत्पत्ति और उसका अर्थ समझने के लिए विभिन्न दृष्टियाँ प्रचलित हैं। सबसे सामान्य दृष्टि के अनुसार, वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'ज्ञान'। इसी आधार पर 'विद्या' शब्द भी बना है। प्रारंभिक काल में वेद का प्रयोग सामान्य ज्ञान या विद्या के लिए होता था। उदाहरण के लिए आयुर्वेद और धनुर्वेद जैसे शब्द इस सामान्य अर्थ को स्पष्ट करते हैं।

कालांतर में, वैदिक साहित्य में 'वेद' शब्द का प्रयोग विशेष रूप से मंत्र और ब्राह्मण दोनों भागों के लिए होने लगा। प्राचीन परिभाषा के अनुसार, मंत्र-भाग और ब्राह्मण-भाग दोनों ही वेद में सम्मिलित हैं। यह दृष्टि वेदों की व्यापकता और उनकी उपयोगिता को दर्शाती है। कुछ विद्वानों ने इसे संकीर्ण रूप में लिया और केवल मंत्र-भाग (संहिता) को ही वेद माना। उनके अनुसार ब्राह्मण-भाग केवल व्याख्या है। लेखक का मत है कि प्रारंभ में वेद का सामान्य अर्थ ज्ञान था, परंतु बाद में मंत्र और ब्राह्मण दोनों के लिए इसका प्रयोग हुआ। अध्ययन और व्याख्या की दृष्टि से 'वेद' शब्द का प्रयोग मुख्यतः मंत्र-भाग के लिए उपयुक्त माना जाता है।

वैदिक साहित्य में चार मुख्य वेद हैं: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। प्रत्येक वेद का स्वरूप और उद्देश्य अलग है। ऋग्वेद मुख्यतः पद्यात्मक रचनाओं का संग्रह है, जिसमें ऋचाओं के रूप में स्तुतियाँ और मंत्र शामिल हैं। यजुर्वेद गद्यात्मक रचनाओं का संग्रह है, जो विशेष रूप से यज्ञ और अनुष्ठानों के लिए उपयोग होता है। सामवेद गीतात्मक रचनाओं का संग्रह है, जिसका प्रयोग मुख्य रूप से संगीत और भक्ति-गीतों में होता है। अथर्ववेद में मंत्र, आयुर्विज्ञान, चिकित्सा और जादुई विज्ञान से संबंधित ज्ञान समाहित है।

प्राचीन ग्रंथों में ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को 'त्रयी' या 'त्रयं ब्रह्म' कहा गया है। यह त्रयी

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

वेदों के मुख्य मंत्र-भागों को दर्शाती है। अथर्ववेद को इसमें कभी-कभी शामिल नहीं किया जाता। शास्त्रीय दृष्टि से, चारों वेदों के मंत्र तीन प्रकार की रचनाओं में विभक्त हैं: पद्य (ऋक्), गद्य (यजुः) और गीत (साम)। इस प्रकार चारों वेदों का ज्ञान इन तीन रचनाओं में संकलित रूप से पाया जाता है।

वेदों के नामों और संरचना का यह विवरण केवल उनके वर्गीकरण के लिए नहीं है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि वैदिक परंपरा में ज्ञान का संकलन और उसका क्रम कितना सुव्यवस्थित था। '*वेदत्रयी*' और '*वेदचतुष्टय*' में केवल दृष्टिकोण का अंतर है, वास्तविक विरोध नहीं। वैदिक परंपरा में शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रंथों में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

प्रत्येक वेद की कई शाखाएँ प्रचलित थीं। शाखा-भेद का कारण मुख्यतः वैदिक शिक्षा का मौखिक स्वरूप था। उस समय अध्ययन और अध्यापन केवल उच्चारण और स्मृति पर आधारित था। एक गुरु के अनेक शिष्य दूर-दूर तक फैलते थे। यात्रा और संचार की कठिनाइयों के कारण पाठ में छोटे-छोटे भेद होना स्वाभाविक था। इसके अलावा, कुछ परिस्थितियों में जानबूझकर पाठ में बदलाव या नई ऋचाओं का सम्मिलन भी हुआ। यही कारण है कि वैदिक संहिताओं में शाखा-भेद उत्पन्न हुआ।

शाखा-भेद के कारण वेद की शाश्वतता या उनके महत्व में कोई कमी नहीं आती। प्रत्येक वैदिक जानता था कि वह किस शाखा से संबंधित है और उसके शाखा में प्रचलित संहिता में थोड़े भिन्नताएँ हो सकती हैं। शाखा-भेद मुख्यतः पाठ में भिन्नता के कारण है और इससे वेद की महत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

वेद की संरचना भी अत्यंत सुव्यवस्थित है। मंत्र-भाग (संहिता) में ऋचाएं, मंत्र और स्तुतियाँ सम्मिलित हैं, जो वेद का मूल भाग हैं। ब्राह्मण-भाग में मंत्रों के प्रयोग, अनुष्ठानों और विधियों का विस्तृत विवेचन है। इसके अलावा उपनिषदों में तत्त्वज्ञान और वेदांत, आरण्यकों में वनवासियों और तपस्वियों के लिए ध्यान और साधना के उपाय, और सूत्रों में कर्मकांड और सामाजिक नियम शामिल हैं। इस प्रकार वेद केवल धार्मिक अनुष्ठानों का निर्देश नहीं देते, बल्कि जीवन के प्रत्येक पहलू और समाज की व्यवस्था का मार्गदर्शन करते हैं।

वेद का अध्ययन न केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए आवश्यक था, बल्कि यह जीवन के प्रत्येक पक्ष की जानकारी और आचार-व्यवहार का मार्गदर्शन भी प्रदान करता है। वेद भारतीय संस्कृति, समाज और ज्ञान परंपरा का आधार हैं। उनका महत्व अतीत में जैसा था, आज भी वैसा ही है और भविष्य में भी अपरिवर्तित रहेगा। वेदों में निहित ज्ञान आज भी मानव जीवन और समाज की समस्याओं को समझने और उनका समाधान करने में उपयोगी है।

ऋग्वेद-संहिता

वैदिक संहिताओं में ऋग्वेद-संहिता सबसे बड़ी और व्यापक मानी जाती है। इसका मुख्य स्वरूप छंदोबद्ध मंत्रों का संग्रह है। छंदोबद्ध मंत्रों को ऋक् या ऋचा कहा जाता है। '*संहिता*' शब्द का अर्थ है संग्रह, इसलिए ऋग्वेद-संहिता का अर्थ है 'ऋचाओं का संग्रह।' यह संहिता वैदिक परंपरा का सबसे प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जो भारतीय संस्कृति और ज्ञान परंपरा का मूल आधार मानी जाती है।

ऋग्वेद-संहिता में विभिन्न पाठ-भेदों के कारण इसकी कई शाखाएँ मानी जाती हैं। प्राचीन ग्रंथों

के अनुसार, जैसे कि महाभाष्य में (लगभग 150 ई. पूर्व) उल्लेख मिलता है कि ऋग्वेद की 21 शाखाएँ थीं। समय के साथ, विशेष रूप से बाद के ग्रंथों में केवल पाँच शाखाओं का ही उल्लेख मिलता है। शाखाओं की इस कमी का मुख्य कारण अध्ययन और अध्यापन की कठिनाइयाँ और संचार की समस्याएँ हो सकती हैं। आजकल जो ऋग्वेद संहिता प्रचलित है, उसका संबंध 'शांकल शाखा' से है।

ऋग्वेद-संहिता कुल दस भागों में विभक्त है, जिन्हें 'मंडल' कहा जाता है। प्रत्येक मंडल में अनेक 'सूक्त' हैं और प्रत्येक सूक्त में अनेक ऋचाएं हैं। संहिता का यह विभाजन अध्ययन, पाठन और व्याख्या की सुविधा के लिए किया गया। प्रत्येक मंडल, सूक्त और ऋचाओं की संख्या इस प्रकार है:-

प्रथम मंडल में 191 सूक्त हैं, जिनमें 2006 ऋचाएं सम्मिलित हैं। द्वितीय मंडल में 43 सूक्त और 429 ऋचाएं हैं। तृतीय मंडल में 62 सूक्त और 617 ऋचाएं हैं। चतुर्थ मंडल में 58 सूक्त और 589 ऋचाएं हैं। पंचम मंडल में 87 सूक्त और 727 ऋचाएं हैं। षष्ठ मंडल में 75 सूक्त और 765 ऋचाएं हैं। सप्तम मंडल में 104 सूक्त और 841 ऋचाएं हैं। अष्टम मंडल में 92 सूक्त और 1636 ऋचाएं हैं। नवम मंडल में 114 सूक्त और 1108 ऋचाएं हैं। दशम मंडल में 191 सूक्त और 1754 ऋचाएं हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर 1017 सूक्त और 10472 ऋचाएं ऋग्वेद-संहिता में सम्मिलित हैं।

ऋग्वेद-संहिता की छपी पुस्तकों में प्रत्येक सूक्त के प्रारंभ में उस सूक्त का 'ऋषि, देवता और छंद' का निर्देश मिलता है। छंद का अर्थ स्पष्ट है; यह किसी ऋचा या मंत्र का छंदबद्ध स्वरूप है। प्रत्येक ऋचा का कोई न कोई छंद होना आवश्यक माना गया है।

'ऋक्' शब्द का मूलार्थ है 'जिससे स्तुति की जाए।' यह 'ऋच् स्तुतौ' धातु से बना है। इसी आधार पर ऋचाओं या सूक्तों में जिन विषयों, तत्वों या शक्तियों का वर्णन होता है, उन्हें 'देवता' कहा जाता है। इसलिए केवल पारंपरिक देवताओं जैसे इंद्र, वरुण, अग्नि आदि ही नहीं, बल्कि किसी सूक्त में वर्णित ज्ञान, संज्ञान, कृषि, अक्ष या प्राकृतिक तत्व भी देवता के रूप में स्वीकार किए गए हैं।

ऋचाओं के 'ऋषि' से क्या अभिप्राय है, इस पर विद्वानों में भिन्न मत हैं। कुछ प्राचीन ग्रंथों के अनुसार, ऋषि वे व्यक्ति हैं जिन्होंने वेद-मंत्रों का साक्षात्कार किया। कुछ अन्य मतों में ऋषि को मंत्र बनाने वाला कहा गया है। वास्तविकता में दोनों ही दृष्टियों में कोई भेद नहीं है। मंत्रों का निर्माण कवि की अलौकिक प्रतिभा और दैवी प्रेरणा से होता है, और यह कहना कठिन है कि इनमें किसका कितना योगदान है। शाब्दिक या मौखिक परंपरा से मंत्रों का ऋषियों से संबंध अवश्य है।

ऋग्वेद-संहिता में समय और क्षेत्र के अनुसार भाषा और मुहावरों में भिन्नता आती है। वैदिक समय में 'विद्या पढ़ी जाती है' को 'विद्या सुनी जाती है' कहा जाता था। इसी प्रकार मंत्रों को देखना, सुनना या बनाना, शब्दों में भले भिन्न लगे, पर वस्तुतः अर्थ समान रहता है। इससे स्पष्ट होता है कि ऋषि, देवता और छंद का उल्लेख केवल अध्ययन और पाठन की सुविधा के लिए किया गया था।

इस प्रकार ऋग्वेद-संहिता न केवल वैदिक मंत्रों का संग्रह है, बल्कि यह मानव जीवन, सामाजिक व्यवस्था, प्रकृति और दैवीय तत्वों के ज्ञान का विस्तृत स्रोत है। इसकी ऋचाओं में स्तुति, ज्ञान, प्रकृति, अनुष्ठान, सामाजिक जीवन और तत्त्वज्ञान का समग्र विवेचन निहित है।

मंडलों का ऋषियों से संबंध और संहिता का क्रम

ऋग्वेद-संहिता का क्रम अन्य वैदिक संहिताओं से भिन्न और विशिष्ट है। जहाँ सामवेद, यजुर्वेद अथवा अथर्ववेद में मंत्रों का क्रम मुख्यत: याज्ञिक उपयोग, अनुष्ठानों और क्रियाओं के अनुसार व्यवस्थित किया गया है, वहीं ऋग्वेद-संहिता का आधार बिल्कुल अलग है। ऋग्वेद के मंत्रों के संकलन में किसी यज्ञ या अनुष्ठान की क्रमबद्धता को प्राथमिकता नहीं दी गई, बल्कि इस संहिता का निर्माण मंत्र-द्रष्टा ऋषियों और उनके वंशों के आधार पर हुआ है। यही बात इसे वैदिक साहित्य में ऐतिहासिक और दार्शनिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है।

ऋग्वेद में यह क्रम केवल साहित्यिक व्यवस्था नहीं, बल्कि एक ऐतिहासिक संकेत भी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह संहिता धीरे-धीरे विकसित हुई और जिन ऋषियों ने मंत्रों का साक्षात्कार किया, उनके वंशों ने भी आगे इस परंपरा को आगे बढ़ाया। इसलिए यह संहिता केवल धार्मिक ग्रंथ ही नहीं, बल्कि प्राचीन भारत की आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक यात्रा का जीवंत दस्तावेज भी है।

ऋग्वेद के प्रथम और दशम मंडल अपनी रचना-प्रकृति में एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं। दोनों में 191 सूक्त हैं और इनमें विभिन्न ऋषियों के मंत्र संग्रहित हैं। ये मंडल कई प्रकार के विषयों, देवताओं और भावनाओं का विस्तृत संग्रह हैं। प्राय: माना जाता है कि ये दोनों मंडल अपेक्षाकृत बाद के काल में संकलित हुए और इसलिए इनमें ऋषियों की विविधता अधिक है। इन दोनों मंडलों में केवल एक ही वंश या एक ही ऋषि का प्रभुत्व नहीं, बल्कि अनेक भिन्न-भिन्न ऋषियों की कृतियाँ सम्मिलित हैं, जो संहिता को विस्तृत और विविध बनाती हैं।

दूसरे मंडल से लेकर सातवें मंडल तक का क्रम इससे बिल्कुल अलग है। ये छ: मंडल विशिष्ट ऋषि-वंशों से जुड़े हुए हैं। इनका आधार किसी यज्ञ परंपरा से नहीं बल्कि कुल-परंपरा, संप्रदाय, और वैदिक ऋषि-परंपरा पर आधारित है। इन मंडलों का ऋषियों से संबंध इस प्रकार है—द्वितीय मंडल के मंत्र द्रष्टा ऋषि गृत्समद हैं; तृतीय मंडल का संबंध विश्वामित्र ऋषि और उनके वंशजों से है; चतुर्थ मंडल वामदेव ऋषि के वंश से जुड़ा हुआ है; पंचम मंडल अत्रि ऋषि के वंश की कृतियों का प्रतिनिधित्व करता है; षष्ठ मंडल भारद्वाज ऋषि के वंश का है; और सप्तम मंडल वसिष्ठ वंश से संबंधित है। इन छह मंडलों में क्रमबद्धता इतनी सहज और स्पष्ट है कि इससे ऋषि-परंपरा की निरंतरता और वंशानुक्रम का संबंध बहुत स्पष्ट हो जाता है।

अष्टम मंडल अपनी विशिष्टता के कारण अनेक विद्वानों का ध्यान आकर्षित करता है। इसका प्रमुख संबंध कण्व ऋषि और उनके वंश से माना जाता है। इस मंडल की विशेषता यह है कि इसमें 'प्रगाथ' नामक विशेष छंद का अत्यधिक प्रयोग मिलता है। इस कारण से इस मंडल के मंत्र-द्रष्टाओं को 'प्रगाथ' भी कहा गया है। इस मंडल में भाषा, शैली और विषय-वस्तु में भी एक विशेष प्रकार की मौलिकता और लयात्मकता दिखाई देती है, जो इसे अन्य मंडलों से कुछ भिन्न बनाती है।

नवम मंडल का स्वरूप बिल्कुल अद्वितीय है। इसका एकमात्र प्रमुख देवता 'पवमान सोम' है। यहाँ मंत्रों का केंद्रबिंदु सोम का प्रवाह, शुद्धि, अस्तित्व, प्रभाव और आध्यात्मिक महत्ता है। इस कारण नवम मंडल को 'सोम मंडल' भी कहा जाता है। इस मंडल में प्रयुक्त ऋषि भी पूर्ववर्ती मंडलों—विशेष रूप से द्वितीय से लेकर सप्तम मंडल—के वंशों से ही हैं। इसका अर्थ यह है कि सोम-स्तुति की परंपरा इन प्राचीन

ऋषि-वंशों द्वारा आगे बढ़ाई गई।

ऋग्वेद-संहिता का यह क्रम—जो मंत्र-द्रष्टा ऋषियों और उनके वंशों पर आधारित है—ऐतिहासिक रूप से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इससे यह ज्ञात होता है कि वेदों की रचना किसी तत्कालिक धार्मिक आवश्यकता का परिणाम नहीं थी, बल्कि यह एक लंबी वैदिक परंपरा और आध्यात्मिक अनुभव का बहुमूल्य संकलन है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि ऋग्वेद का मूल स्वरूप याज्ञिक कर्मकांड से परे, एक मौलिक काव्य, आध्यात्मिक अनुभूति, प्राकृतिक चित्रण और दार्शनिक ज्ञान के रूप में प्रकट हुआ है।

ऋग्वेद-संहिता का विषय

ऋग्वेद-संहिता का मर्म यह है कि इसमें केवल ऋचाओं का संग्रह है, और ऋचा का स्वभाव स्तुति करने का है। इसलिए इस संहिता का मुख्य विषय विभिन्न देवताओं की स्तुति, उनका गुणगान और उनके कार्यों का वर्णन है। वैदिक देवताओं को प्रकृति के तीन स्तरों में विभाजित किया गया है—पृथिवी, अंतरिक्ष और द्युलोक। पृथ्वी से संबंधित देवता अग्नि, सोम और पृथिवी माने गए हैं; अंतरिक्ष से संबंधित इंद्र, रुद्र और वायु हैं; तथा द्युलोक से संबंधित वरुण, उषा और सूर्य जैसे देवता हैं।

ऋग्वेद में देवताओं की स्तुतियों की व्यापकता और विविधता दिखाई देती है। लगभग ढाई सौ सूक्त इंद्र की महत्ता पर केंद्रित हैं, क्योंकि इंद्र वैदिक कल्पना में वीरता, शक्ति और संरक्षण के देवता हैं। अग्नि के भी लगभग दो सौ सूक्त हैं, जो यज्ञ, अग्नि, ऊर्जा और जीवन के प्रतीक के रूप में उसकी महत्ता को दर्शाते हैं। सोम के सौ से अधिक सूक्त उसकी दिव्यता, पवित्रता और आध्यात्मिक महत्त्व को व्यक्त करते हैं। यम, मित्र, वरुण, रुद्र, विष्णु आदि अन्य देवताओं के भी सूक्त मिलते हैं, पर उनकी संख्या तीन प्रमुख देवताओं की तुलना में कम है।

ऋग्वेद की विशेषता यह है कि यहाँ केवल व्यक्त देवताओं की ही स्तुति नहीं, बल्कि श्रद्धा, मनु आदि अमूर्त अवधारणाएँ भी देवता-रूप में प्रस्तुत हैं। इस प्रकार ऋग्वेद केवल प्रकृति-पूजा का ग्रंथ नहीं, बल्कि दार्शनिक भावभूमि का भी आधार है। इसमें कई सूक्त ऐसे हैं जो सृष्टि, अस्तित्व, सत्य, ऋतु, मनस् और ब्रह्म जैसे अत्यंत गंभीर दार्शनिक तत्वों पर प्रकाश डालते हैं।

वास्तव में, ऋग्वेद की सामग्री में जिस प्रकार से संस्कृति, समाज, विचार और प्रकृति का मूल रूप अंकित है, वह किसी अन्य वैदिक संहिता में उपलब्ध नहीं है। यही कारण है कि ऋग्वेद को वैदिक साहित्य का मूल स्त्रोत माना जाता है। वैदिक कर्मकांड और धार्मिक परंपराओं का प्रमुख आधार भी यही संहिता है, क्योंकि सभी याज्ञिक क्रियाओं के मूल मंत्र ऋग्वेद से ही ग्रहण किए जाते हैं।

यजुर्वेद-संहिता

यजुर्वेद-संहिता वैदिक वाङ्मय का वह महत्वपूर्ण अंग है, जिसमें यज्ञ-कर्मों से संबंधित मंत्र तथा उनके उपयोग, क्रम और विधियों का विस्तृत विवेचन मिलता है। महाभाष्यकार पतंजलि के समय में यजुर्वेद की 101 शाखाएँ विद्यमान बताई जाती थीं। समय के परिवर्तन के साथ अनेक शाखाएँ लुप्त होती गईं, और बाद के ग्रंथों में इनकी संख्या अलग-अलग बताई गई। वर्तमान समय में केवल पाँच शाखाओं की संहिताएँ उपलब्ध हैं, जो यजुर्वेद के प्राचीन वैदिक स्वरूप का परिचय देती हैं।

यजुर्वेद दो रूपों—शुक्ल (सफेद) और कृष्ण (काला) यजुर्वेद—में विभाजित है। यह विभाजन अत्यंत प्राचीन है और वैदिक विद्वानों के बीच लंबे समय से स्वीकार किया जाता रहा है। पाँच उपलब्ध संहिताओं में से तीन—तैत्तिरीय, मैत्रायणी और कठ—कृष्ण यजुर्वेद की परंपरा से संबंधित हैं, जबकि दो—माध्यंदिन और काण्व—शुक्ल यजुर्वेद की परंपरा का प्रतिनिधित्व करती हैं।

दोनों रूपों में मुख्य अंतर यह है कि शुक्ल यजुर्वेद में मंत्र-भाग अलग और शुद्ध रूप में संहिताबद्ध है, जबकि कृष्ण यजुर्वेद में मंत्र-भाग और ब्राह्मण-भाग आपस में मिले हुए पाए जाते हैं। मंत्र का उपयोग यजुष् के रूप में किया जाता है, जो सामान्यत: गद्यात्मक होते हैं; जबकि ब्राह्मण ग्रंथ उन मंत्रों के प्रयोग, अर्थ, तत्त्व और विधि का विस्तृत वर्णन करते हैं। मंत्र और ब्राह्मण के मिले-जुले स्वरूप के कारण कृष्ण यजुर्वेद अपनी शैली में अधिक जटिल, मिश्रित और पुरातन प्रतीत होता है। इसके विपरीत शुक्ल यजुर्वेद अपेक्षाकृत व्यवस्थित और शुद्ध रूप में माना जाता है, इसलिए उसे 'शुक्ल' अर्थात् निर्मल—नाम दिया गया।

इस भेद का एक सांस्कृतिक और भौगोलिक पक्ष भी है। कृष्ण यजुर्वेद की परंपरा मुख्यत: दक्षिण भारत में विकसित हुई, जहाँ समय के साथ वैदिकेत्तर विचारधाराओं का प्रभाव भी दिखाई देता है। इसके उलट, शुक्ल यजुर्वेद मुख्य रूप से उत्तर भारत—विशेषत: मनु के आर्यावर्त कहलाए क्षेत्र—में प्रचलित रहा। सम्भव है कि वैदिक साहित्य को अधिक शुद्ध, व्यवस्थित और मौलिक रूप में संरक्षित रखने की भावना से ही शुक्ल यजुर्वेद का प्रारंभ हुआ हो। यह स्थिति कुछ वैसी ही प्रतीत होती है जैसे आधुनिक युग में पौराणिक परंपराओं के विरोध में 'शुद्ध वेद-मार्ग' के लिए आर्यसमाज का उदय हुआ।

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यंदिन शाखा अत्यंत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इस शाखा का प्रसार भारत में किसी भी अन्य वैदिक शाखा से अधिक है। माध्यंदिन शाखा की यजुर्वेद-संहिता 40 अध्यायों में विभक्त है और इसमें लगभग 1975 कंडिकाएँ वर्णित हैं, यद्यपि मंत्र-संख्या को लेकर विद्वानों में कुछ मतभेद पाए जाते हैं। यह संहिता मुख्यत: गद्यात्मक यजुष्मंत्रों से बनी है, लेकिन इसमें बड़ी संख्या में ऋचाएँ भी सम्मिलित हैं। आश्चर्य की बात यह है कि इनमें से सात सौ से अधिक ऋचाएँ ऋग्वेद में भी पाई जाती हैं, जो दर्शाती हैं कि वैदिक साहित्य परस्पर संबद्ध और एक ही सांस्कृतिक धारा से विकसित हुआ है।

यजुर्वेद का मूल उद्देश्य यज्ञों के लिए आवश्यक मंत्रों को क्रमबद्ध करना और उनके प्रयोग के विधि-नियमन को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना है। इस प्रकार ऋग्वेद जहाँ वैदिक देवताओं के स्तोत्रों का संग्रह है, वहीं यजुर्वेद उन स्तोत्रों के प्रयोग-क्रम और अनुष्ठान-पद्धति का सरल मार्गदर्शक है। इसी कारण यजुर्वेद को वैदिक यज्ञ-व्यवस्था की आत्मा कहा गया है।

यजुर्वेद-संहिता का क्रम और विषय

यजुर्वेद-संहिता का निर्माण पूर्णत: याज्ञिक (यज्ञ-संबंधी) व्यवस्था को ध्यान में रखकर किया गया है। इसकी संरचना ऐसे क्रम में रखी गई है कि यज्ञों के संचालन में पुजारी मंत्रों को उसी क्रम में पढ़ सके, जिसमें वे यज्ञ के प्रत्येक चरण में आवश्यक होते हैं।

प्रारंभिक अध्यायों में दर्श-पूर्णमास नामक यज्ञ का विस्तार मिलता है, जिसमें प्रथम अध्याय से लेकर द्वितीय अध्याय के 28वें मंत्र तक इसी यज्ञ की विधियाँ, आहुतियाँ और उपयोग किए जाने वाले मंत्र

क्रमशः दिए गए हैं। इसके बाद संहिता के आगे के भागों में क्रमपूर्वक वैदिक यज्ञों—जैसे पिण्ड-पितृयज्ञ, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, पशुयाग, सत्रयाग, आदि—में प्रयुक्त मंत्रों का विस्तृत संकलन प्राप्त होता है। संहिता का यह स्वरूप यह दिखाता है कि यजुर्वेद केवल मंत्रों का संग्रह नहीं बल्कि यज्ञ-प्रक्रिया का व्यवस्थित मार्गदर्शन करने वाला ग्रंथ है।

अंतिम अध्याय इससे भिन्न है। 40वाँ अध्याय, जिसे ईशोपनिषद् के रूप में जाना जाता है, कर्मकांड से हटकर ज्ञानकांड का विषय है। यह अध्याय मनुष्य को आत्मा, परमात्मा और ब्रह्मांड के संबंध में दार्शनिक दृष्टि प्रदान करता है। इस प्रकार यजुर्वेद न केवल यज्ञीय जीवन का मार्गदर्शक है, बल्कि आध्यात्मिक ज्ञान का भी प्रकाशक है।

'यजुस्' और 'यज्ञ' दोनों शब्द 'यज्' धातु से बने हैं, जिसमें पूजा, दान और संगति (उपासना) का भाव निहित है। इसीलिए यजुर्वेद की मूल प्रकृति यज्ञ के क्रियात्मक पक्ष पर आधारित मानी गई है। निरुक्तकार यास्क तथा ब्राह्मण-ग्रंथों में भी यही सिद्धांत मिलता है कि यज्ञ की क्रियाएँ यजुस् मंत्रों के द्वारा ही सम्पन्न मानी जाती हैं।

यद्यपि सामान्य रूप से यजुर्वेद को एक याज्ञिक ग्रंथ माना गया है, परंतु आचार्य स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस संहिता की व्याख्या केवल याज्ञिक दृष्टि से नहीं, बल्कि एक व्यापक, नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी की है। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि यजुर्वेद का ज्ञान केवल यज्ञ-प्रक्रिया का मार्गदर्शन ही नहीं, बल्कि एक संपूर्ण जीवन-दर्शन का प्रसार भी करता है।

इस प्रकार यजुर्वेद-संहिता का क्रम यज्ञ-क्रिया की निरंतरता पर आधारित है, और उसका विषय कर्मकांड एवं ज्ञान—दोनों का समन्वय प्रस्तुत करता है।

सामवेद-संहिता

सामवेद-संहिता वैदिक साहित्य का वह वेद है जिसे संगीत और गान का वेद कहा जाता है। महाभाष्य में इसकी एक सहस्र (1000) शाखाओं का उल्लेख मिलता है, किंतु कालांतर में इनमें से अधिकांश नष्ट हो गईं और आज केवल तीन शाखाएँ—कौथुम, राणायनीय, और जैमिनीय ही उपलब्ध हैं। इनमें से राणायनीय शाखा सबसे अधिक प्रचलित और मान्य मानी जाती है।

राणायनीय संहिता में कुल 1549 ऋचाएँ हैं, जिनमें से केवल 75 को छोड़कर शेष सभी ऋचाएँ ऋग्वेद से ही ली गई हैं। इससे स्पष्ट है कि सामवेद का मूल स्वरूप स्वतंत्र रचना न होकर चुनिंदा ऋग्वैदिक मंत्रों का संग्रह है, जिन्हें विशेष उद्देश्य साम-गान के लिए चुना गया।

सामवेद दो मुख्य भागों में विभाजित है—

1. पूर्वार्चिक – इसमें छह प्रपाठक हैं।

2. उत्तरार्चिक – इसमें नौ प्रपाठक शामिल हैं।

इन दोनों भागों में मंत्रों का संग्रह याज्ञिक क्रियाओं, विशेषकर सोम-याग, को ध्यान में रखकर किया गया है। इन मंत्रों का उद्देश्य मुख्यतः गान है, इसलिए सामवेद की ऋचाएँ वैसे तो ऋग्वेद जैसी ही दिखाई देती हैं, लेकिन उनका स्वर-लेखन सामवेद की विशिष्ट शैली में किया गया है। यही स्वर-चिह्न इन्हें

गान योग्य बनाते हैं।

सामवेद का कोई अलग स्वतंत्र दार्शनिक विषय नहीं है। जो देवताओं की स्तुति ऋग्वेद में है, वही यहाँ साम-गान रूप में प्रकट होती है। इसका वास्तविक ध्येय श्रुति-संगीत की परंपरा को यज्ञोपयोगी रूप में प्रतिष्ठित करना है। सामवेद की विशेषता यह है कि इसमें वे रागात्मक और लयात्मक तत्त्व विकसित हुए, जिनसे भारतीय संगीत का आदि स्वरूप निर्मित माना जाता है।

संगीत की ही इस महत्ता को देखते हुए श्रीकृष्ण ने भागवद्गीता में कहा—

'वेदानां सामवेदोऽस्मि' अर्थात् वेदों में मैं सामवेद हूँ, जिससे सामवेद की आध्यात्मिक एवं सांगीतिक प्रतिष्ठा का संकेत मिलता है।

इस प्रकार सामवेद-संहिता वैदिक परंपरा का वह अंग है, जिसमें मंत्र, स्वर और यज्ञ—तीनों का सुंदर संगम दिखाई देता है।

अथर्ववेद-संहिता

अथर्ववेद प्राचीनकाल में नौ शाखाओं में उपलब्ध था, पर आज केवल दो—शौनक और पिप्पलाद शाखाएँ मिलती हैं। इनमें शौनक शाखा अधिक प्रसिद्ध है। इस संहिता में 20 कांड, 730 सूक्त और लगभग 6000 मंत्र हैं। इनमें से लगभग 1200 मंत्र ऋग्वेद से लिए गए प्रतीत होते हैं, और 20वाँ कांड लगभग पूरा ऋग्वैदिक सूक्तों का ही संग्रह है। 15वाँ और 16वाँ कांड गद्य-शैली में हैं।

अथर्ववेद की मुख्य विशेषता यह है कि जहाँ अन्य तीनों वेद मुख्यतः श्रौत यज्ञों से जुड़े हैं, वहीं अथर्ववेद का संबंध गृह्य कर्मकांड (जन्म, विवाह, मृत्यु-संस्कार) तथा राजाओं के अभिषेक आदि अनुष्ठानों से है। केवल 20वाँ कांड सोमयाग-संबंधी है।

इस वेद में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ्य, राजविद्या, सामनस्य, आध्यात्मविद्या जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर अनेक सूक्त मिलते हैं। इसका पृथिवी सूक्त अत्यंत प्रसिद्ध और अद्वितीय माना जाता है।

अथर्ववेद की विशेष दृष्टि यह है कि इसमें मंत्र को स्वयं शक्ति का रूप माना गया है—मंत्र केवल यज्ञ के लिए नहीं, बल्कि स्वतंत्र रूप से भी प्रभावी और उपयोगी समझा जाता है। इसीलिए जहाँ अन्य वेद द्रव्य-प्रधान यज्ञों पर आधारित लगते हैं, वहीं अथर्ववेद को सामान्य जनता का वेद कहा जाता है, क्योंकि यह जीवन के व्यावहारिक, सामाजिक और आध्यात्मिक सभी पक्षों को छूता है।

ब्राह्मण-ग्रंथ

वेदों के बाद वैदिक साहित्य में ब्राह्मण-ग्रंथों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक वेद-संहिता के साथ एक या अनेक ब्राह्मण जुड़े हुए माने जाते हैं। उदाहरण के लिए— ऋग्वेद के साथ 'ऐतरेय ब्राह्मण' और 'कौषीतकि ब्राह्मण', यजुर्वेद के साथ विशाल 'शतपथ ब्राह्मण', सामवेद के साथ 'तांड्य महा-ब्राह्मण' तथा अन्य, अथर्ववेद के साथ केवल 'गोपथ ब्राह्मण'।

इनमें सबसे बड़ा शतपथ ब्राह्मण है, जिसमें 100 अध्याय और 14 कांड हैं। अन्य ब्राह्मण ग्रंथ आकार में छोटे हैं, पर विषय की दृष्टि से उतने ही महत्त्वपूर्ण।

ब्राह्मण-ग्रंथों की प्रमुख विशेषता यह है कि वे 'गद्य' में लिखे गए हैं। संस्कृत भाषा की प्राचीन

गद्य-शैली को समझने के लिए ये ग्रंथ सबसे प्रामाणिक आधार हैं। गद्य की सरल, विचारशील और तर्कपूर्ण अभिव्यक्ति इन ग्रंथों की पहचान है।

इनका महत्त्व केवल भाषा तक सीमित नहीं है। ब्राह्मण ग्रंथ प्राचीन भारतीय चिंतन की उस धारा को स्पष्ट करते हैं जो बाद के दर्शन-शास्त्रों का आधार बनी। इनमें अनेक स्थानों पर गहरे दार्शनिक विचार, विस्तृत तर्क-वितर्क, और चिंतन की विकसित शैली दिखाई देती है। शब्दार्थ और व्युत्पत्ति (निर्वचन) पर भी इनमें उत्कृष्ट सामग्री मिलती है।

इतिहास की दृष्टि से भी ये बहुमूल्य हैं। ब्राह्मणों में अनेक प्रसंग, परंपराएँ, कथाएँ तथा यज्ञों से जुड़े सामाजिक-सांस्कृतिक विवरण बिखरे हुए मिलते हैं, जो उस समय की सभ्यता और जीवन-व्यवस्था की झलक देते हैं।

वेदांग

वेदों के संरक्षण, सही उच्चारण, अध्ययन-पद्धति और वैदिक आचार की रक्षा के लिए प्राचीन भारत में छह सहायक विद्याओं का गठन हुआ, जिन्हें **वेदाङ्ग** कहा जाता है। ये वेद-ज्ञान की मूल धारा को सुरक्षित रखने वाले स्तंभ हैं।

वेदांगों के छह विभाग :

(1) शिक्षा – वर्णों के शुद्ध उच्चारण की विद्या। इसका उद्देश्य यह है कि वैदिक मंत्रों का स्वर, मात्रा, बल और उच्चारण यथावत् सुरक्षित रहे।

(2) छंद – गायत्री, त्रिष्टुप आदि छंदों की संरचना और व्याख्या का शास्त्र।

(3) व्याकरण – भाषा की शुद्धता और व्याकरणिक नियमों की सुव्यवस्थित परंपरा, जिसकी सर्वोच्च कृति पाणिनि की अष्टाध्यायी मानी गई।

(4) निरुक्त – कठिन वैदिक शब्दों का अर्थ, व्युत्पत्ति और भाषाई विवेचन।

(5) ज्योतिष – यज्ञों के समय-निर्धारण और खगोलीय गणना की विद्या।

(6) कल्प – वैदिक कर्मकांड, गृह्याचार, यज्ञ-विधि तथा धर्मसूत्रों का विस्तृत विधान।

समय के साथ वेदों के पाठन में कमी और विविध संस्कृतियों के प्रभाव को देखते हुए इन वेदाङ्गों का विकास अत्यावश्यक हो गया था। यही कारण है कि वैदिक परंपरा को व्यवस्थित, सुरक्षित और वैज्ञानिक रूप में बनाए रखने में इनका अद्वितीय योगदान रहा।

आगे चलकर कई वेदांग ग्रंथ विशिष्ट रूप में प्रसिद्ध हुए–

शिक्षा से 'पाणिनि-शिक्षा', छंद से 'पिंगल-छंद:सूत्र', व्याकरण से 'अष्टाध्यायी', निरुक्त से 'यास्क-कृत निरुक्त', ज्योतिष से 'वेदांग ज्योतिष', और कल्प से श्रौत, गृह्य तथा धर्मसूत्रों की परंपरा।

वेदांगों के ग्रंथ मुख्यत: ईसा पूर्व के समय में रचे गए, और यह भारत के प्राचीन बौद्धिक उत्कर्ष का प्रमाण है। विशेष रूप से व्याकरण-परंपरा–पाणिनि की अष्टाध्यायी आज भी विश्व में अपनी वैज्ञानिकता और संक्षिप्तता के लिए अनुपम मानी जाती है।

वैदिक परिशिष्ट

वेदों की मूल संहिताओं को सुरक्षित, शुद्ध और संरक्षित रूप में बनाए रखने के लिए प्राचीन काल में वैदिक विद्वानों द्वारा बड़ी संख्या में सहायक ग्रंथ रचे गए। इन्हें ही वैदिक परिशिष्ट कहा जाता है। ये वेदों के पाठ, संरचना, ऋषि-परंपरा, छंदों, देवताओं तथा सूक्ष्म भाषिक भेदों को दर्ज करने वाले विशिष्ट ग्रंथ हैं।

विभिन्न वेद-शाखाओं के आचार्यों ने अपनी-अपनी संहिताओं को सटीक रूप से संरक्षित रखने के लिए अनेक पद्धतियाँ अपनाईं। उन्होंने संहिताओं में पदों की संधि खोलकर पद-पाठ तैयार किए, अलग-अलग प्रकार के पाठ-संकरण बनाए, और मंत्रों, ऋषियों, देवताओं तथा छंदों की अनुक्रमणिकाएँ बनाई। कई ग्रंथों में तो मंत्रों की संख्या से लेकर उच्चारण में सूक्ष्म भेद—जैसे 'स्' और 'श्या प्' का अंतर या 'व्' और 'ब्' का भेद—तक को भी विस्तार से दर्ज किया गया, ताकि किसी भी प्रकार का विकार संहिता में प्रवेश न कर सके।

इन्हीं प्रयत्नों से अनेक सूचीनुमा, व्याख्यात्मक और पाठ-सुरक्षा सम्बन्धी ग्रंथों की परंपरा विकसित हुई। ऋग्वेद से जुड़े दो ग्रंथ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं—

शौनकाचार्य की बृहद्देवता (लगभग ईसा पूर्व 500) — जिसमें ऋग्वैदिक देवताओं तथा मंत्रों का विस्तृत विवरण मिलता है।

कात्यायन-कृत ऋक्सर्वानुक्रमणी (लगभग ईसा पूर्व 450) — जिसमें ऋग्वेद के मंत्रों, ऋषियों, देवताओं और छंदों की व्यवस्थित अनुक्रमणी दी गई है।

इन परिशिष्टों की संख्या सैकड़ों में है, और उनका अस्तित्व स्वयं प्रमाण है कि वैदिक संहिताओं को सुरक्षित रखने के लिए भारतीय परंपरा ने कितनी सूक्ष्मता, सावधानी और वैज्ञानिकता से कार्य किया। वैदिक परिशिष्ट यह दिखाते हैं कि वेद न केवल धार्मिक ग्रंथ थे, बल्कि ज्ञान, भाषा, संस्कृति और शास्त्रीय अध्ययन की जीवंत परंपरा के केंद्र में भी थे।

निष्कर्षत: वेदिक साहित्य कई स्तरों में विकसित एक विशाल ज्ञान-परंपरा है, जिसमें वेद-संहिताएँ, ब्राह्मण-ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद्, वेदाङ्ग और परिशिष्ट—सभी परस्पर जुड़े हुए हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चारों अपने-अपने विशिष्ट कार्य क्षेत्रों हेतु रचे गए—ऋचाओं द्वारा देवस्तुति, याज्ञिक विधि, सामगान तथा गृह्य एवं लोकजीवन से जुड़ी विद्या। ब्राह्मण-ग्रंथों ने वैदिक कर्मकांड, दार्शनिक विचार और गद्य परंपरा को विकसित किया; आरण्यक और उपनिषदों ने आध्यात्मिक, तत्वज्ञान और ब्रह्मविद्या की दिशा में गहन चिंतन दिया। वेदांगों —शिक्षा, छंद, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प—ने वेदों के संरक्षण, सही व्याख्या और अध्ययन की वैज्ञानिक नींव रखी। परिशिष्ट-ग्रंथों ने वेदों के पाठ, पद, उच्चारण, छंद, देवता-निर्धारण और अनुक्रमण को सटीक रूप से सुरक्षित रखा। संपूर्ण वैदिक परंपरा यह सिद्ध करती है कि प्राचीन भारतीय मनीषा ने ज्ञान, विज्ञान, भाषा, अनुष्ठान, दर्शन और सांस्कृतिक संरक्षण का अद्भुत संतुलन विकसित किया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ऋग्वेद, आर.टी.एच. ग्रिफिथ का अनुवाद, बनारस, 1896-97*
2. *यजुर्वेद, उव्वट-महीधर-भाष्य सहित, चौखम्भा, 1912*
3. *सामवेद, सम्पादक और अनुवादक- टी वेनफी, लिपझिग, 1848*
4. *अथर्ववेद, सायणभाषयोपेत, एस.सी. पण्डित द्वारा सम्पादित, बम्बई, 1967 तथा स्वाध्याय मण्डल, पारडी (गुजरात), 1938*
5. *आचार्य लक्ष्मी दीक्षित, वेद मीमांसा, नई दिल्ली 1980, भूमिका*
6. *अमर सिंह, अमरकोश, आर. शाम शास्त्री, मैसूर, 1920*
7. *डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति (वैदिक साहित्य का इतिहास), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पंचम संस्करण, 2010*
8. *डॉ. सुरेन्द्र कुमार, वैदिक आख्यानों का वैदिक स्वरूप, सत्यधर्म-प्रकाशन, सत्य सनातन वेद मन्दिर आश्रम, रोहिणी, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, अक्टूबर 2005, विक्रमाब्द 2062*
9. *वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण तथा आरण्यक, प्रणव प्रकाशन, पंजाबी बाग, नई दिल्ली, 1974*
10. *पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति, विद्यामार्तण्ड, वेदों का यथार्थ स्वरूप, जन-ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, श्रावण संवत 2030*
11. *डॉ. (श्रीमती) प्रतिभा आर्य, स्मृतियों में राजनीति और अर्थशास्त्र, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (वाराणसी), प्रथम संस्करण 1987*
12. *अथर्ववेदसंहितागत परिवार-मीमांसा, नारायण प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 2013*
13. *(सं.) राजवीर शास्त्री, दयानन्दसन्देश : वेद-विशेषांक (श्रावणी पर्वत पर), आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, सितम्बर-अक्टूबर 1996*
14. *स्वामी दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत हरियाणा*
15. *वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण तथा आरण्यक, प्रणव प्रकाशन, पंजाबी बास, नई दिल्ली, 1974*
16. *डॉ. धीरेन्द्र कुमार सिंह, ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति, पैनमैन पब्लिशर्स, दिल्ली, 1993*